शैक्षिक समावेशन के संदर्भ में मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा

रश्मि श्रीवास्तव*

भारत जैसे विविधता वाले देश में विभिन्न भाषाओं के समायोजन व उनकी श्रेष्ठता के साथ न्यायपूर्ण तरीके से शैक्षिक व्यवस्थापन एक बड़ी चुनौती है। किन्तु यदि हम देश के जन-जन तक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं, देश के एक-एक बच्चे के हाथ में चॉक, स्लेट, पेन व पेन्सिल देखना चाहते हैं, इन पर अपने बच्चों की उँगलियों की मज़बूत पकड़ देखना चाहते हैं तो उन तक उनकी भाषा में शिक्षा की सुविधा व पठन-पाठन सामग्री पहुँचानी होगी। यहाँ ध्यान इस बात का भी रखना होगा कि पढ़ लिख कर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के क्रम में ये कहीं पीछे ना रह जाएँ अत: संबंधित तैयारी के प्रति भी सचेत रहना होगा।

मेरे स्कूल में, चार दीवारी के भीतर
मेरी आवाज़ हो जाती है धीमी, हो जाती है बन्द,
क्योंकि
मेरी किताबो में, मेरी कक्षा में टंगे ब्लैक बोर्ड पर
लिखे होते हैं ऐसे शब्द,
जिनके आकार का, जिनसे निकलती प्रतिध्वनि-
जिनसे निकलते मतलब का,
मेरे ज़हन में नहीं है कोई चित्र।
मैं अपने दादा को ,
बड़े ज़ोरदार शब्दों में बताता हूँ अपना नाम,
बताता हूँ अपने घर का पता, बड़ी सहजता से लेकिन
कक्षा में खड़ी मैम को बताना है,
ये सब एक ऐसी भाषा में,
जिसके लिए रट लिए गये हैं कुछ लयबद्ध शब्द,
ये शब्द, कुछ फ़ंसे से गले में,
मंद कर देते है मेरी आवाज़, मेरे भाव, मेरी चहक,
मेरी उमंग,
मैं हो जाता हूँ निरुत्तर नि:शब्द।

स्कूल जाते बच्चे के गले में शब्दों की ये फाँस एक बड़ी समस्या है। हम देखते हैं कि तमाम प्रयासों,

**असिस्टेंट प्रोफ़ेसर* (बी.एड.) महिला विद्यालय डिग्री कॉलेज लखनऊ।

तमाम प्रतिबद्धताओं के बावजूद भाषाई स्तर पर हमारे पाठ्यक्रम, हमारी व्यवस्था बहुत ठीक ठाक नहीं हैं। अत: आवश्यक है कि शिक्षा के माध्यम, पाठ्यक्रम में विभिन्न भाषाओं के संयोजन व समाज के हर वर्ग तक स्कूली भाषा की पहुँच के प्रति हमारे शिक्षाविद् व हमारी व्यवस्थाएँ संवेदनशील हों।

शिक्षा का माध्यम तथा मातृभाषा की महत्ता

महात्मा गाँधी ने शिक्षा में मातृभाषा की महत्ता की ओर संकेत करते हुए कहा था, "मेरी मातृभाषा में कितनी ही खामियाँ क्यों न हो मैं उससे उसी तरह चिपका रहूँगा जिस तरह अपनी माँ की छाती से। वही मुझे जीवनदायी दूध दे सकती है।"[1] यहाँ मुद्दा सिर्फ़ भावनात्मक नहीं है मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से एक बालक की सहजता अपनी मातृभाषा के प्रति सर्वाधिक होती है। ऐसा देखा गया है कि अन्य भाषाओं पर अधिकार रखने के बावजूद रचनात्मकता प्राय: मातृभाषा में ही मुखरित होती रही है। बड़े-बड़े लेखकों ने अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम प्राय: अपनी मातृभाषा को ही चुना है। इन्हीं मनोवैज्ञानिक पहलुओं को ध्यान में रखकर गाँधी जी ने आगे यह भी कहा, "विदेशी भाषा द्वारा शिक्षा दिए जाने से जो बोझ दिमाग पर पड़ता है वह असह्य है। यह बोझ केवल हमारे बच्चे ही उठा सकते हैं। लेकिन उसकी कीमत हमारे बच्चों को उठानी पड़ती है। वह दूसरा बोझ उठाने लायक नहीं रह जाते। ....उनके खोज की शक्ति, विचार करने की ताकत, साहस, धीरज, बहादुरी, निडरता आदि गुण क्षीण हो जाते हैं।"[2]

भारत देश में शिक्षा के अग्रदूत, तमाम शिक्षाविदों ने भी इस मुद्दे पर एकमत हो शिक्षा व्यवस्था में मातृभाषा की महत्ता को सर्वोपरि रखा। रवीन्द्रनाथ टैगोर ने अपने बाल्यकाल में मातृभाषा द्वारा प्राप्त की गई शिक्षा की महत्ता का उल्लेख करते हुए कहा भी था, "सौभाग्य से मेरे ज्येष्ठ भ्राता का यह दृढ़ मत था कि बालक को विदेशी माध्यम से शिक्षा नहीं मिलनी चाहिए। इन्होंने कहा भी था मातृभाषा में यदि शिक्षा की धारा प्रशस्त न हो तो इस विद्याहीन देश में मरूवासी मन का क्या होगा।"[3] "इस वास्ते जब तक मैं बड़ा नहीं हो गया और बंगला साहित्य में खूब दक्ष न हो गया मेरा अंग्रेज़ी पढ़ना शुरू नहीं हुआ। मेरी प्रारंभिक शिक्षा मुझे देशी भाषा में ही दी गई। अंग्रेज़ी पढ़ने से पहले ही मुझे बंगला साहित्य की उत्तम पुस्तकें पढ़ने और समझने का अवसर मिला अपने आपके अनुभव से मैं भली भाँति जानता हूँ कि मेरे संवर्द्धन और मानसिक विकास में इसका कितना योगदान रहा है।"[4] श्री अरविन्द घोष, स्वामी विवेकानन्द, गिजुभाई बधेका, सर्वपल्ली राधाकृष्णन व दौलत सिंह कोठारी आदि अनेक शिक्षाविदों ने भी मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाए जाने की वकालत की।

यह एक बड़ी सामान्य सी बात दिखाई देती है विद्यालय जो कि जीवन का एक अहम हिस्सा है, जहाँ हमें जीवन जीने की तैयारी का पाठ सीखना है, जहाँ किताबें, बस्तों व ब्लैकबोर्ड में खो कर स्वयं को अभिव्यक्त करना है। शिक्षक के बोले जाने व पुस्तकों में छपे शब्दों के माध्यम से तमाम बातें सीखनी हैं। वहाँ स्वाभाविकता का वेग कदमों को तेज़ी देगा, कृत्रिमता उसमें बाधा। स्वाभाविकता की सहजता उड़ान को तेज़ कर देगी इसमें कोई दो राय नहीं। हमारे

विद्यालयों में मातृभाषा की प्रतिध्वनि विद्यालयों की दीवारों में इसी स्वाभाविकता को बनाए रख सकेगी। हमें ध्यान देना होगा कि हमारे बहुभाषाभाषी देश में एक बड़ा तबका विकास की गति से छूटा हुआ है आज भी भारत में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत तक ही पहुँच सकी है। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश राजस्थान व बिहार जैसे हिंदी भाषी राज्यों में साक्षरता का प्रतिशत क्रमश: 67.68, 69.32, 66.11 तथा 61.80 ही है।[5] रफ्तार की रौ में छूटे इस वर्ग को विकास की धारा में जोड़ने का काम मातृभाषा कर सकेगी इसमें कोई दो राय नहीं।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा की दिशा, समावेशन व भाषा

यहाँ एक प्रमुख मुद्दा शिक्षा की दिशा, शैक्षिक समावेशन व भाषा के तालमेल का है। एक स्वस्थ, सन्तुलित रूप से विकसित समाज का आधार शैक्षिक समावेशन है। भारत के शिक्षा दार्शनिकों में अग्रणी विवेकानंद ने कहा भी था, "देश उसी अनुपात में उन्नत हुआ करता है, जिस अनुपात में वहाँ के जनसमुदाय में शिक्षा और बुद्धि का प्रसार होता है। भारतवर्ष की पतनावस्था का मुख्य कारण यह रहा कि मुट्ठी भर लोगों ने देश की संपूर्ण शिक्षा और बुद्धि पर एकाधिपत्य कर लिया। यदि हम पुन: उन्नत होना चाहते हैं तो हम जनसमूह में शिक्षा का प्रसार कर वैसे हो सकते हैं।[6] स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में मोटे तौर पर शिक्षा का ढाँचा अंग्रेज़ों द्वारा भारत में स्थापित शिक्षा व्यवस्था का ही है। ऊपरी तौर पर इनमें कुछ फ़ेर बदल ज़रूर किये गये है, किंतु मूलभूत ढाँचे में बदलाव नहीं हो सका है। अत: उपर्युक्त तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए संदर्भ अंग्रेज़ी शासन के तत्कालीन शिक्षा पद्धति से लेने होंगे।

अंग्रेज़ी शासन काल में शिक्षा की दिशा उसका लक्ष्य भारत में अंग्रेज़ी शासकों के लिए योग्य कर्मचारी तैयार करना व एक ऐसे वर्ग का विकास करना था जो रंग रूप में भारतीय हो किंतु रुचि, विचार आदर्श तथा बुद्धि में अंग्रेज़ हों। इस व्यवस्था के तहत देश के अभिजात्य वर्ग में शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्रमुखता दी गई। स्वतन्त्र भारत में शैक्षिक लक्ष्य भिन्न हैं। संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न, समाजवादी हमारा देश, देश के एक-एक बालक बालिका तक शिक्षा के प्रचार-प्रसार हेतु कृतसंकल्प हैं।

अनुच्छेद 15(1) द्वारा समानता के अधिकार के तहत यह स्वीकार किया गया है कि राज्य किसी नागरिक के प्रति केवल धर्म, मूलवंश, जाति जेंडर जन्म स्थान या केवल इनमें से किसी एक के आधार पर विभेद नहीं करेगा। अनुच्छेद 30 (1 व 2) द्वारा अल्पसंख्यकों के शैक्षिक हितों की रक्षा की गई है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के खंड चार में कहा गया है कि नयी नीति भेदभाव की समाप्ति एवं अब तक समानता से वंचित लोगों की विशिष्ट आवश्यकताओं पर ध्यान देकर शैक्षिक अवसर के समानीकरण पर विशेष ज़ोर देगी।

नयी शिक्षा नीति 1986 में इस बात पर भी विशेष ज़ोर दिया है कि सभी व्यक्तियों को ना केवल शिक्षा तक पहुँच के समान अवसर प्रदान किए जाएँ वरन सफ़लता के लिए समान परिस्थितियाँ भी प्रदान की जाएँ। आज राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में शिक्षा सभी के

लिए है। यह हमारे सर्वांगीण विकास, भौतिक तथा आध्यात्मिकता का आधार है। हमारी संवेदनशीलता व प्रत्यक्षीकरण को परिमार्जित राष्ट्रीय एकता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण तथा मस्तिष्क व आत्मा की स्वतंत्रता को बढ़ाने का एक महत्वपूर्ण साधन है। अर्थात् स्वतंत्र भारत में शिक्षा की दिशा व लक्ष्य पर्याप्त विस्तृत है। अत: यहाँ शैक्षिक ढाँचा ब्रिटिश शासनकाल में पोषित शिक्षा पद्धति के अनुरूप होना एक समस्या है। ब्रिटिश काल में भारत को भारतीयता की जड़ से पृथक करने का मुख्य माध्यम भाषा रही है। अंग्रेज़ी माध्यम की शिक्षा ने मैकाले के लक्ष्य को सहज कर भारतवासियों को भारतीयता से दूर करने का काम किया। अत: आज भी उन व्यवस्थाओं को स्वीकृत किये रहने से नवीन परिणाम उत्पन्न कैसे हो सकेंगे।

वास्तव में शिक्षा की दिशा, समावेशन व भाषा एक दूसरे के साथ गुँथे हुए दिखाई देते हैं। विस्तृत शैक्षिक उद्देश्यों ने आज जब हमें शैक्षिक समावेशन के प्रति कृतसंकल्प किया है तो समाज के एक-एक वर्ग, एक-एक तबके तक शिक्षा की पहुँच उनकी भाषा को साथ लेकर चलाने में होगी। संकीर्ण शैक्षिक लक्ष्य जहाँ शैक्षिक समावेशन के प्रति असंवेदनशील होंगे वहीं वर्ग विशेष के उत्थान को प्रतिबद्ध व्यवस्थाएँ वर्ग विशेष की भाषा को प्रसारित करेंगी।

यहाँ तनिक करीब से देखें तो शिक्षा का प्रारम्भ, साक्षरता व अंकों के ज्ञान से है। नीचे से नीचे व ऊपर से ऊपर के तबके तक यह कार्य उनकी खुद की भाषा में अधिक प्रभावपूर्व ढंग से हो सकेगा। हमें इस बात की अनदेखी भी नहीं करनी चाहिए कि मैकाले निर्देशित व्यवस्थाओं ने भारत देश में अप्रत्यक्ष रूप से सकारात्मक प्रभाव भी उत्पन्न किए हैं। उनके द्वारा स्थापित अंग्रेज़ी शिक्षा प्रणाली के माध्यम से देश अंतर्राष्ट्रीय संपर्क स्थापन के योग्य बन सका। तमाम विद्वतजनों ने ना केवल भारतीय संस्कृति, कला व साहित्य से संसार को उनकी भाषा से परिचित कराया अपितु हमें उनकी संस्कृति, ज्ञान विज्ञान आदि को हमारी भाषा में हमें बताने का काम भी किया। आज शैक्षिक समावेशन हेतु हमारी मुख्य समस्या है समाज के निचले, ग्रामीण तथा अल्पसंख्यक वर्ग तक शिक्षा की पहुँच ना होना। तमाम प्रयासों के बीच उन तक उनकी भाषा में शिक्षा की पहुँच इस संदर्भ में सकारात्मक कदम है। “वास्तव में एम.एल.ई. कार्यक्रम विकासशील देश की मुख्य आवश्यकता है। विकासशील देशों में अल्पसंख्यकों को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने में यह व्यवस्था प्रभावी है।”[7] युनेस्को 2003, 2005 ने एम.एल.ई. कार्यक्रम के मुख्य 4 स्तर बताए–[8]

1. बालक की घरेलू भाषा (Home Language) में सिखाने की प्रक्रिया की शुरुआत।
2. मातृभाषा में मौखिक सहजता (Fluency) तथा द्वितीय भाषा परिचय।
3. द्वितीय भाषा की मौखिक सहजता (Fluency) तथा साक्षरता परिचय।
4. जीवन पर्यंत अधिगम हेतु प्रथम तथा द्वितीय भाषा की शिक्षा।

एन.एल.ई. कार्यक्रम समाज के सभी वर्ग को उनकी स्वयं की भाषा में शिक्षा की उपलब्धता का प्रभावपूर्ण साधन है।[9] UNESCO ने भी

मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा द्वारा समाज के अल्पसंख्यकों व निचले तबके को विद्यालयों तक लाए जाने की वकालत की है।[10]

अर्थात देश के जन-जन तक शिक्षा की पहुँच उनकी भाषा में पहुँचाने की व्यवस्था के बीच अंतर्राष्ट्रीय परिदृश्य पर अपने पाँव पसारने के लिए अन्य यूरोपीय भाषाओं का आश्रय भी लेना होगा। यह काम अवश्य ही मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा (एम.एल.ई.) द्वारा प्रभावपूर्ण तरीके से संभव है। हमारी शिक्षा का एक अन्य उद्देश्य देश को एकता के सूत्र में बाँधे रखना भी है। अर्थात् मातृभाषा की स्वाभाविकता, यूरोपीय भाषा की (अंग्रेज़ी) प्रबुद्धता के साथ-साथ हमें ज़रूरत एक ऐसी सर्वग्राह्य भाषा के प्रसार की भी है जो देश के जन-जन को एकता के सूत्र में बाँध सके। उनके आपसी सहज संप्रेषण का साधन बन सके। नि:सन्देह ये तीनों ही लक्ष्य मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा से प्राप्त हो सकेंगे।

भारत में मातृभाषा – आधारित बहुभाषी शिक्षा का स्वरूप तथा समस्याएँ–

भारत एक बहुभाषा भाषी देश है। भारतीय संविधान की आठवीं अनुसूची (VIII Schedule) के अनुसार देश में 22 प्रमुख भाषाएँ हैं। जो कि असमिया, बंगला, बोड़ो, डोगरी, गुजराती, हिंदी, कन्नड़, कश्मीरी, कोंकणी, मैथिली, मलयालम, मणिपुरी, मराठी, नेपाली, उडिया, पंजाबी, संस्कृत, संथाली, सिन्धी, तमिल, तेलुगू व उर्दू हैं। नि:सन्देह इनमें से प्रत्येक भाषा की अपनी महत्ता, अपना प्रभाव व ज़रूरत है। यहाँ समस्या यह है कि इनमें से कोई भी एक भाषा ऐसी नहीं है जिसे देश के सभी नागरिक व्यावहारिक रूप से बोल व समझ सकें। यद्यपि हिंदी भाषा देश की सर्वाधिक बोली व समझी जाने वाली भाषा है।

अत: यहाँ 'शिक्षा का माध्यम' संबंधी विवाद का उठना स्वाभाविक है। संविधान के अनुच्छेद 343'क' द्वारा हिंदी को राजभाषा का दर्जा दिये जाने के बावजूद यह विवाद सुलझ नहीं सका है। हिंदी को राजभाषा का दर्जा देते हुए भी पंद्रह वर्षों के लिए अंग्रेज़ी को सह राजभाषा बनाये जाने से यह समस्या जटिल ही हुई है। शैक्षिक लक्ष्य में बदलाव के बावजूद भाषा के स्तर पर हम मैकाले की व्यवस्था से खुद को पृथक नहीं कर सके हैं।

केंद्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् 1956 (CABE) ने इस समस्या का व्यावहारिक हल भारत में त्रिभाषा सूत्र को लागू किया जाना माना। भारत सरकार द्वारा घोषित राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में कहा गया है कि राज्य सरकारों को माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र को अपनाना व लागू करना चाहिए। इसके तहत हिंदी भाषी राज्यों में हिंदी व अंग्रेज़ी के अलावा किसी एक आधुनिक भारतीय भाषा जिसमें किसी दक्षिण भाषा को वरीयता दी जाए तथा अहिंदी भाषी राज्यों में क्षेत्रीय भाषा, अंग्रेज़ी के साथ हिंदी को रखना चाहिए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में भी इस व्यवस्था को स्वीकार किया गया।

भारतीय शिक्षा नीति में त्रिभाषा सूत्र की व्यवस्था भारत में भाषा विवाद का व्यावहारिक हल है। किन्तु राजनीतिक समीकरणों ने यहाँ भी उलझन व पेचीदगी पैदा की है। राजनीतिक समीकरणों से अलग शिक्षा के क्षेत्र में प्रकाश तो उस किसी भी व्यवस्था

से दिखाई देता है जो गली कूँचों, मुहल्लों, दरिया किनारे, पहाड़ी व रेगिस्तानी किसी भी इलाके किसी भी जाति, वर्ग व जेंडर के बालक-बालिकाओं को अक्षर ज्ञान दे सके, उन्हें पढ़ना-लिखना सिखा सभ्य समाज का हिस्सा बना सके। उन्हें वह आधार दे सके जिससे वे प्रकृति के सौंदर्य से ले कर अपने मन के सहज या विकट कैसे भी भाव को सहजता से व्यक्त कर सके। अपनी क्रियाशीलता को, सृजनात्मकता को, शब्द दे सके उन्हें कागज़ों पर अंकित कर सके। किन्तु व्यवहार में यहाँ सब कुछ इतना सहज, इतना स्वाभाविक है नहीं!

मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा व्यवस्था को विभाषा सूत्र में पिरो कर हमारे शिक्षाविदों ने अवश्य ही भारत में शैक्षिक समावेशन का व्यावहारिक हल खोजने का प्रयास किया किंतु सरकारी काम-काज़ व रोज़गार जनित भाषा के रूप में इन्हें पर्याप्त जगह ना मिलने की दशा में स्थिति जस की तस है। क्षेत्रीय भाषा में शिक्षित बालक युवावस्था की दहलीज़ पर रोज़गार प्राप्ति और समाज की मुख्यधारा से खुद को जोड़ने के क्रम में स्वयं को पिछली कतार में पीछे बहुत पीछे खड़ा पाता है। अंग्रेज़ी भाषा के वर्चस्व व राजभाषा हिंदी के गौण दर्जे से त्रिभाषा सूत्र की अवधारणा भी गौण हुई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों बाद भी भाषाई स्तर पर भेद-भाव ज्यों का त्यों विद्यमान है।

अत: शैक्षिक व्यवस्थापन से लेकर शिक्षा प्राप्ति हेतु तत्पर वर्ग में मातृभाषा-आधारित शिक्षा प्रणाली के प्रति संशय का भाव है। इस व्यवस्था के क्रियान्वयन में आ रही तमाम अड़चनें निम्नवत हैं-

- इस व्यवस्था के सफ़ल क्रियान्वयन के लिए पाठ्यपुस्तकों, पाठ्य सामग्रियों व प्रशिक्षित अध्यापकों की उपलब्धता हेतु अतिरिक्त धन की आवश्यकता है। जिसकी व्यवस्था के प्रति राज्य तथा केंद्र सरकारें बहुत गंभीर नहीं हैं। तत्संबंधी आर्थिक कठिनाइयाँ प्रत्यक्ष हैं।
- विविध भाषाओं के शैक्षिक पाठ्यक्रम को पढ़ाने के लिए प्रशिक्षित शिक्षकों की उपलब्धता भी हर क्षेत्र में बहुत सहज नहीं है।
- मातृभाषा-आधारित बहुभाषी (एम.एल.ई.) व्यवस्था द्वारा छात्र छात्राओं का विद्यालयी पाठ्यक्रम अत्यंत बोझिल हो जाता है।
- राज्य सरकारें प्राय: इस व्यवस्था को बहुत संजीदगी से नहीं ले सकी हैं। हिंदी भाषी राज्यों में दक्षिण भारतीय भाषाओं तथा दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा हिंदी के प्रति प्राय: उदासीनता का भाव है।
- भारत में मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा (एम.एल.ई.) के स्वीकृत त्रिभाषा स्वरूप के प्रति राज्य सरकार की नीतियों में विविधता है। कुछ राज्य आधुनिक भारतीय भाषाओं के स्थान पर प्राचीन भाषा को प्रमुखता दे रहे हैं।
- भाषाओं के अनिवार्य अध्ययन अवधि में भी भिन्न-भिन राज्यों में विविधता है।
- भाषा नीति तथा भाषाओं के विकास के संबंध में निर्णय लेने वाली विभिन्न संस्थाओं, केंद्र व राज्य सरकारों, शिक्षा परिषदों, विश्वविद्यालयों आदि में परस्पर समन्वय का अभाव है।
- अंग्रेज़ी भाषा के गहरे प्रभाव से बुद्धिजीवी वर्ग

की अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ न्याय नहीं कर पा रहा है।

- क्षेत्रीय भाषाओं के न्यून सामाजिक स्तर की अवधारणा भी सही प्रकार से शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा को स्थापित कर सकने में एक बड़ी बाधा बन रहा है।

आवश्यक सुझाव– स्पष्ट है कि शिक्षा हेतु एक बालक की अभिव्यक्ति में भाषा की सहजता का अपना महत्व है| शिक्षा के माध्यम के रूप में किसी भी असहज भाषा की अनिवार्यता से जन-जन तक शिक्षा का प्रकाश पहुँचाने के हमारे स्वप्न व मौलिक सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति की संभावनाएँ क्षीण ही होंगी। अत: वर्तमान ज़रूरतों के अनुरूप विविध भाषाओं का समावेश शिक्षा में हो सके यह एक सराहनीय कदम होगा, किंतु मातृभाषा की अनदेखी एक गलत दिशा भी साबित हो सकती है। हमारे देश के तमाम शिक्षाविदों, चिंतकों आदि ने इस तथ्य को सदैव स्वीकृति दी। हमारी संवैधानिक व्यवस्थाओं ने तत्संबंधी आवश्यक कदम भी उठाये हैं किंतु इस समस्या का ना तो पूर्ण समाधान हो सका है और ना ही शिक्षा के स्तर पर भाषाई समस्या के घेरे में आने वाले हमारे विद्यार्थियों के साथ उचित न्याय हो सका है।

हमारी शैक्षिक व्यवस्था में, खुले विद्यालयी प्रांगण में एक विद्यार्थी अपनी जानकारी अपने ज्ञान और अपनी सर्जना को अभिव्यक्त करने में यदि हीन भावना से ग्रस्त हो पीछे की श्रेणी में खड़ा हो तो स्थिति ठीक नहीं है। यदि किसी भाषा विशेष की सामाजिक स्तर की हीनता के कारण एक विद्यार्थी का गला, उस हीनता से ग्रस्त हो अभिव्यक्ति के मध्य रुंध जाये तो व्यवस्थाओं में न्याय नहीं है। हिन्दुस्तानी विद्यालयों, महाविद्यालयों में यह एक आम समस्या है। जिसमें दूर दराज़ के गाँव व कस्बे का एक श्रेष्ठ, कुशल विद्यार्थी ज्ञान व बौद्धिक रूप से उच्च स्तर का होने के बावजूद यूरोपीय भाषा (अंग्रेज़ी) में दक्ष ना होने के कारण अपनी मातृभाषा के हीन सामाजिक स्तर की हीनता से घिरा कक्षा में पीछे सिमटा सा बैठा मिलता है। नि:सन्देह कक्षा में हीनता का यह सिमटा हुआ घेरा आगे चलकर उनकी गति को अवरुद्ध कर देगा। अत: हमें अवश्य ही इस दिशा में संवेदनशील हो आवश्यक कदम उठाने होंगे। जो कि इस प्रकार हो सकते हैं–

हमें इस तथ्य की ओर अवश्य ही विशेष ध्यान देना होगा कि भाषा शिक्षा व भाषाई स्तर पर उत्पन्न कोई भी समस्या राष्ट्रीय महत्व की समस्या है अत: इस समस्या के समाधान हेतु नीतिगत स्पष्ट आदेश व संविधान सम्मत समाधान हेतु भी हमें तत्पर होना होगा।

- मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा की संकल्पना को साकार रूप देने हेतु हमारी व्यवस्थाओं, को दृढ़ होना होगा तत्संबंधी स्पष्ट दिशानिर्देश निर्गत करने होंगे।
- भारत में भाषा संबंधी समस्या के समाधान हेतु सुझाए गये उपायों का विरोध प्राय: राजनीतिक ही रहा है। राजनैतिक स्वार्थपरता को दूर करने के उपाय खोजने होंगे।
- हिंदी को देश की राष्ट्रभाषा बना दिया जाना मात्र भाषा समस्या का अंत नहीं है। इस संवैधानिक

व्यवस्था के व्यवहारिक क्रियान्वयन हेतु आवश्यक कदम भी उठाने होंगे।

- हमारी राजभाषा हिंदी को यद्यपि देश का एक बड़ा वर्ग अपने रोज़मर्रा के काम-काज में प्रयुक्त करने में सहज है किंतु आगे चलकर विविध शैक्षिक कार्यक्रमों, शैक्षिक पाठ्यक्रमों व क्रियाकलापों में यह सहजता बनी नहीं रह पाती क्योंकि प्राय: वैज्ञानिक व तकनीकी शब्दावली में हिंदी व क्षेत्रीय भाषाओं की पकड़ ना तो बहुत मज़बूत हो सकी है। और ना ही ये शब्दावली शिक्षक और विद्यार्थी के बीच सहज हो सकी है। उच्च शिक्षा पाठ्यक्रमों वैज्ञानिक और तकनीकी शब्दावली हेतु अंग्रेज़ी पर निर्भरता भारत में शैक्षिक समावेशन हेतु मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा की बाधा रही है। अत: अति आवश्यक है कि भारत में मातृभाषा व राष्ट्रीय भाषा में तकनीकी शब्दावली के सहज अनुवाद व तत्संबंधी पठन-पाठन सामग्री की उपलब्धता सुनिश्चित की जाएँ।
- अनूदित साहित्य व पाठ्य पुस्तकें भी इस दिशा में सहायक होंगी।
- ऐसा भी देखा गया है कि कक्षा में एक शिक्षक की भाषाई स्तर पर जटिलता है वह स्वयं मातृभाषा व राष्ट्रीय भाषा के माध्यम से शिक्षण हेतु सहज नहीं है। क्या यह बेहतर हो कि शिक्षकों को भी समय-समय पर प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से तत्संबंधी सुधार के अवसर दिए जाएँ।
- अहिंदी भाषी क्षेत्रों में हिंदी अध्यापकों व हिंदी भाषी क्षेत्रों में दक्षिण भारतीय भाषाओं के अध्यापकों की नियुक्ति करना, भाषा शिक्षण के लए अध्यापकों को सघन प्रशिक्षण देने तथा भाषा शिक्षण में अनुसंधान करने व नवीन तकनीक के प्रयोग की संभावनाओं को खोजने की दिशा में विशेष प्रयास किये जाएँ।
- मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा व्यवस्था की स्वीकृति मात्र से काम पूरा ना होगा। इससे संबंधित संसाधन व शैक्षिक माहौल भी हमें अवश्य बनाना होगा। हमें ध्यान रखना होगा कि विविध भाषाओं की पाठ्यपुस्तकें व विषय सामग्री सहजता से शिक्षक व विद्यार्थियों को सुलभ हों। तकनीकी शब्दों के अनुवाद सुलभ हों। तत्संबंधी योग्य शिक्षक उपलब्ध हो तथा विद्यालयों में सभी भाषाओं के लिए समान दर्जे का माहौल हो।
- इस पूरी समस्या में एक प्रमुख मुद्दा मानसिकता का है। सामाजिक दर्जे का है, हमारी सोच का है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है और समाज द्वारा स्वीकृत उच्च स्तर के मानदंडों पर खरा उतरने के लिए पूरा ज़ोर लगाता है। सामाजिक श्रेष्ठता के प्रतीकों के प्रति सदैव सचेत रहता है। उसे पाने की कोशिश करता है। भारत में भाषा संबंधी जटिलता में भाषा की सामाजिक श्रेष्ठता का दर्जा भी जटिलता पैदा कर रहा है। अंग्रेज़ी भाषा की सामाजिक श्रेष्ठता की सर्वमान्य स्वीकृति ने राजभाषा और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं के विकास में बाधा उत्पन्न की है। हम मानसिक रूप में इन भाषाओं को शिक्षा के सम्मानित माध्यम के रूप में स्वीकार नहीं कर पाये है। अत: ज़रूरी

दिखाई देता है कि विविध प्रकार के जागरूकता कार्यक्रमों के माध्यम से भाषाई स्तर पर किसी भी प्रकार की हीनता से निजात दिलाई जाए जब तक हम अपनी खुद की भाषा, अपने खुद के साहित्य के प्रति गौरव का भाव महसूस नहीं करेंगे उसके साथ ना तो दमदारी से खड़े होंगे, ना ही उसे सही रूप में प्रस्तुत कर सकेंगे।

- यहाँ यह भी ज़रूरी दिखाई देता है कि प्रत्येक प्रान्त में क्षेत्रीय भाषा (मातृभाषा) की शिक्षा अनिवार्य रूप से दी जाये। सभी प्रान्तों में प्राथमिक स्तर से ही राष्ट्रभाषा हिंदी और अंतर्राष्ट्रीय भाषा अंग्रेज़ी को ऐच्छिक भाषाओं के रूप में पढ़ाने की व्यवस्था की जाए। यहाँ ध्यान देना होगा कि प्राथमिक स्तर पर ये दोनों। भाषाएँ एक बालक के लिए अनजान व असहज भाषा है अत: इनका शिक्षण व पठन पाठन रुचिपूर्ण ढंग से सहजता से किया जाये। मातृभाषा राष्ट्रभाषा व अंतर्राष्ट्रीय भाषा का ये समायोजन एक बालक को क्षेत्रीय, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय तीनों ही स्तर पर सफ़ल संप्रेषण के योग्य बना सकेगा।
- हाँ यहाँ शैक्षिक उपलब्धता, विषयवस्तु की उपलब्धता व अनूदित साहित्य की उपलब्धता के लिए भी ज़ोर-शोर से काम करना होगा जिससे किसी भी भाषा का विद्यार्थी अपनी भाषा में सहजता से पढ़ लिख सके, अपनी सृजनात्मकता को मुखरित करने के लिए उसे भाषा की जटिलता के कारण पीछे न हटना पड़े।

स्पष्ट है कि भारत जैसे विविधता वाले देश में विभिन्न भाषाओं के समायोजन व उनकी श्रेष्ठता के साथ न्यायपूर्ण तरीके से शैक्षिक व्यवस्थापन एक बड़ी चुनौती है। किंतु यदि हम देश के जन-जन तक शिक्षा का प्रसार करना चाहते हैं। देश के एक-एक बच्चे के हाथ में चॉक, स्लेट, पेन व पेंसिल देखना चाहते हैं। इन पर अपने बच्चों की उँगलियों की मज़बूत पकड़ देखना चाहते हैं तो उन तक उनकी भाषा में शिक्षा की सुविधा व पठन-पाठन सामग्री पहुँचानी होगी। यहाँ ध्यान इस बात का भी रखना होगा कि पढ़ लिख कर समाज की मुख्यधारा से जुड़ने के क्रम में ये कहीं पीछे ना रह जाएँ। अत: संबंधित तैयारी के प्रति भी सचेत रहना होगा।

हमें ध्यान देना होगा कि आसमान में उड़ता अकेला पक्षी कभी भी उतना आकर्षक नहीं दिखाई देता जितना झुंड में उड़ती उनकी बेतरतीब आकृति, उस आकृति से बनते चित्र। किसी एक स्वर विशेष से संगीत की बेहतरीन धुने नहीं बना करती। किसी एक स्वर की प्रधानता में विविध स्वरों के संयोजन से बनी धुन ही संगीत का आकर्षण है अत: भारत में मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा का सफ़ल क्रियान्वयन ही वह असीम ताकत है जो राजभाषा के मुख्य स्वर से आबद्ध हो क्षेत्रीय व अंतर्राष्ट्रीय भाषा के संयोजन से एक ऐसी स्वर लहरी एक ऐसी मधुर धुन दे सकेगा, जिससे संपूर्ण विश्व अभिभूत हो हमारी अभिव्यक्ति पर सम्मोहित होगा। मातृभाषा-आधारित बहुभाषी शिक्षा का सफ़ल क्रियान्वयन देश के एक-एक बच्चे को शिक्षा की परिधि में गूँथ कर ऊँचे आकाश में संग साथ उड़ने की ताकत दे ऐसी आकृति दे सकेगा जिससे ये पूरा संसार आश्चर्य चकित हो उन्हें मुग्ध भाव से निहारेगा।

टिप्पणी एवं संदर्भ

[1]गाँधी, मोहनदास करमचंद. 2008. मेरे सपनों का भारत, संग्राहक आर.के. प्रभु, नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, प्र. 214

[2]______. 2008. मेरे सपनों का भारत, संग्राहक, आर.के. प्रभु नवजीवन प्रकाशन, अहमदाबाद, पृ. 180

[3]राय अमृत. 1990. रवीन्द्रनाथ के निबंध (भाग-2), साहित्य अकादमी नयी दिल्ली पृ. 339

[4]उद्धृत पाण्डेय राम शकल, विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा शास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 305

[5]www.censns 2011co.in/literacy

[6]द कंपलीट वर्क ऑफ़ स्वामी विवेकानंद. 2010. भाग-वी मायावती मेमोरियल एडीशन कलकत्ता, पृ. 482

[7]en.m.wikipidea.org

[8]en.m.wikipidea.org

[9]www.nmrc.Jnu.org

[10]दि नारमेटिव फ्रेमवर्क फ़ार लैंग्वेज एंड एजुकेशन, भाग-2 देखिये, एजुकेशन इन मल्टीलैंग्वेज वर्ड, यूनेस्को 2003, प्रिंटेड इन फ्रांस (Ed-2013/ws/2½